* विराट के अंगुष्ठ में झांकी :–

यानि भगवान ने यदि दस इन्द्रियों (दशरथ) के इस इस शरीर रूपी रथ का सारथी मानि यदि जीव अपने जीवन का सारा भार इस भगवान 'राम' पर छोड़ दे, इसे ही अनुपम पथ प्रदर्शक (मैत्री) अंतर्हृदय सारथी (हमेशा का साथी) बनाये रखे तो जिस प्रकार से अन्त की अबाध्य गति सब जगह थी इसी प्रकार यह महामंत्र जीवन में रोम रोम में रम जाय तो फिर वे हृदय रूपी आंगन में खेलते हैं, बाल लीला करते हैं, हृदय में झूला झूलते हैं अंत में जीव राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम मनुष्य प्रभु के परमधाम को प्राप्त कर लेता है।

(१२२०)

देवर्षि नारद (संकेत - 31)

३/७/८४ हमारे हिन्दू शास्त्रों में देवर्षि नारद का बड़ा ही प्रमुख स्थान रहा है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी रामचरित मानस रचना में आदि, मध्य और अंत में राम-कथा में देवर्षि नारद को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

आरम्भ सो रामावतार का नारद के शाप से ही होता है हालांकि इस शाप को भी प्रभु की इच्छा से ही बताते हैं। जब मायापति प्रेरित नारद मायारूपी नृप सुता से व्याह करने अति आतुर हो जाते हैं तब प्रभु इनके परम हित को दृष्टि में रख कर रूप वाला को स्वयं लेकर नारद को वंचित करते हैं:-

"आपन रूप देहु प्रभु मोहि। आन भाँति नहिं पावौं ओही।। जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा।

"जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥ (१-१३२) "दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासी" (१-१३५) कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी। मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥ (१-१३६) "मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥ (१-१३८) और रोषवश नारद मुनि प्रभु को श्राप देने के पहले दोनों रुद्र गणों को श्राप दे चुके हैं "होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ" (१-१३७) और इसके बाद प्रभु को श्राप देकर फिरती जाते समय जब दोनों ने अनुग्रह की याचना की तब दीनदयाल नारद ने कहा "समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥ (१-१३९) इस रावण और कुम्भकरण का जन्म भी नारद

के हेतु स्राप ही हुए। इनके संहारार्थ और
भी भू के हेतु श्री राम का अवतार ग्रहण,
सीता हरण एवं वानरों की सहायता से
तदनन्तर आदि सभी चरणों का
स्रोत ही नारद का श्राप ही हुआ अतः
रामचरित मानस में वर्णित राम कथा
के कारण नारद ही हुए।

मध्य में यदि अपने प्रेमी भक्तों
की आकांक्षाओं को पूरी कर
चुकने के बाद पम्पा तट पर जब
प्रभु विराजमान हैं और एवं आगे
दुराचारियों अत्याचारियों के
विनाश संहार के लिये अग्रसर होंगे
पर उसके पहले फिर नारद प्रभु
के सम्मुख आते हैं। सीता हरण हो
चुका है तब विरही प्रभु के सम्मुख
आते हैं। विरहवंत भगवंतहि
देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी।।
मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम
नाना दुख भारा।। ऐसे प्रभुहि

~~बिलोकि~~ बिलोकउँ आई। पुनि न बहिहि अस अवसरु आई॥ नाथ।

बिबिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि। नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि॥ (3-41) राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥ एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ॥ (3-42) नारद को विवाह प्रभु ने क्यों नहीं करने दिया, इसका समाधान प्रभु करते हैं और संतों के लक्षणों का वर्णन प्रभु करते हैं। इस प्रकार साधन का और उपासकों को उपदेश से भक्ति जगत को अत्यधिक उपकार होता है। इस नाम की सर्वोच्च महत्ता प्रभु के श्रीमुख से प्रतिपादित कराके नारद ने भक्ति-उपासकों को अत्यधिक सम्बल प्रदान किया है।

श्रीरामचरितमानस में श्रीराम-चरित की कथा करते हुए श्री तुलसीदास जी ने नारद के द्वारा श्रीराम का यशोगान एवं स्तुति करा कर ही लो किया है।

(२२५)

अकरम्भन बध के बाद प्रभु अयोध्या के राज्य तिलक के बहुत समय बाद प्रभु जी को उपदेश देने के बाद, वशिष्ठ मुनि प्रभु के पद में प्रेम की याचना कर जब चले जाते हैं इसके बाद भाइयों और हनुमानजी के साथ प्रभु शीतल अमराई में जब विराजमान हैं उस समय नारद मुनि आकर "प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम। सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम" (७-५१) बस तुरत ही राम-चरित कथा तुलसीदास जी बंद कर देते हैं। इस प्रकार श्रीराम चरितमानस में वर्णित राम-कथा के आदि मध्य एवं अंत में नारद का विशेष स्थान है।

आम तौर पर जन साधारण की धारणा बनी हुई कि नारद दोनों पक्षों को भिड़ा कर कलह कराते रहते हैं। "नारदो कलहप्रियः" और इस स्वभाव वाले मनुष्य को नारद कह

दिया जाता है। पार्वती जी की माता
मयना भी ऐसे ही भाव प्रकट करती
है "नारद कर मैं काह बिगाड़ा। भवनु
मोर जिन्ह बसत उजारा।। पर घर
घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान
प्रसव कै पीरा।।" (१-९७) पार्वती जी
की प्रेम परीक्षा लेने के लिये भगवान
शंकर द्वारा भेजे गये सप्तर्षि भी
पार्वती जी से कहते हैं "नारद कर उपदेसु
सुनि कहहु बसेउ किसु गेह।। दच्छ सुतन्ह
उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न
देखा आई।। चित्रकेतु कर घरु उन
घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला।।
नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि
होहिं तजि भवनु भिखारी" (१-७९)
यह प्रतीति भ्रमवश ही धारणा बनी
हुई है। गहराई में जाने पर पता चलता
है कि परम वैराग्य नारद सदा ही
जीव प्रभु प्राप्ति का सही मार्ग ही
पकड़ाते आये हैं। तुलसीदास जी ने

इसके बाद ही सप्तर्षि के मुख से सार
गर्भित बात कहलायी है
"अपराध सहिस सब दिन चद कीन्हा (१-६८)
ठीक ही तो है जिस प्रकार स्वयं परम
देवता हैं उसी प्रकार सब को सत्पुरुष
परमार्थ का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। प्रभु की
वैर-भाव भक्ति और सत्पुरुषों
को प्रेम भक्ति का ही मार्ग बताया है
पुराणों के उदाहरणों से भी यही है। इसके
अनुसार इस विषय में मानस वर्णित
कुछ के उदाहरण और देखे जाय -
(१) पार्वती जी ने इनके संरक्षण का पालन कर
भगवान शंकर को पति रूप में प्राप्त किया
"जौं तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि
सकहिं त्रिपुरारी।। जद्यपि बर अनेक जग
माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं।। (१-७०)
और उमा जी ने तप का प्रमाण किया
अति दृढ़ता के साथ "नारद कहा सत्य
सोइ जाना। बिनु पंख हम चहहिं
उड़ाना।। चाहिअ प्रभु सदा सिवहि भरतारा
(१-७८)

"नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥ (१-८१) सुनहु न नारद का उपदेसु। ... कहहिं सत बारु महेसु॥ (१-८१)

(२) जानकी जी — जनक दुलारी जी को भी नारद ने कहा था कि जिसे तुम्हारा मन वर लेगा, वही तुम्हारा पति होगा, और वही शिव धनु भी तोड़ेगा। इस की ओर संकेत कर तुलसीदास जी लिखते हैं "सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत॥" (१-२२९)

(३) विष्णु वाहन गरुड़ जी —
जब मेघनाद ने श्रीराम को नाग पाश में बाँध लिया तब नारद ने नाग पाश से राम मुक्त करने के लिये गरुड़ को भेजा "ब्याल पास बस भए खरारी" (६-७३) "इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम ... समीप सपदि सो आयो॥ खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।" (६-७४) प्रभु को नाग पाश में बंधा देख कर गरुड़ को भ्रम घेर लेता है "भव बंधन

ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोई राम॥
(7-58) तब गरुड़ नारद के पास जाकर
अपना संशय निवेदन करते हैं "ब्याकुल
गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो
संसय निज मन माहीं॥ सुनि नारदहि लागि
अति दाया॥ चतुरानन पहिं जाहु
खगेसा। (7-59) वहाँ से चलकर
भगवान के पास गरुड़ फिर कागभुसुंडि
के पास जाते हैं और वहाँ इनका
संशय नाश होता है।

(4) कुम्भकर्ण को श्री नारदजी उपदेश दिया है
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ
तोहि समय निरबहा (6-63) और उसे
कितने उत्तम कोटि का भक्त बना डाला है उसकी
भक्ति ली जाय "लोचन सुफल करौं मैं
जाई॥ स्याम गात सरसीरुह लोचन।
देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥ राम रूप
गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक। (6-63)
और इसके ही बाद [illegible] तैयार,

जिसकी ज्योति प्रभु के मुख में तेजस्वी,
विश्व की इतिहास में कितनों को मिला है॥

नारद भगवान के उपासनार्थ हैं ध्रुव और प्रह्लाद जैसे उत्तम कोटि के भक्तों को उनकी तपस्या करने में ही भगवत्प्राप्ति के पथ पर चढ़ाने वाले भी ये नारद ही थे। दक्ष ने दस हजार मानसपुत्र उत्पन्न किये और उन्हें सृष्टि करने का आदेश दिया किन्तु इसी समय नारद इनके यहाँ गये और उपदेश देकर बाबाजी बना दिया। दक्ष ने फिर दस हजार मानसपुत्र उत्पन्न करके यही आज्ञा दी कि तु फिर नारद उन्हें बाबाजी बना दिया। तब दक्ष ने इन्हें शाप दिया कि तुम कहीं भी दो घड़ी से अधिक टिक न सकोगे।

नारद भगवान के मनोवतार यानि मूर्तिमान हैं और ब्रह्माजी के मन से इनका प्रादुर्भाव हुआ है। ये आजन्म ब्रह्मचारी थे अतः सृष्टि का बंधन।

इन्हें पसन्द नहीं। इनका एक ही काम
है चलते फिरते श्री हरि के गुण गान और
एक ही उद्देश्य है अपुनरच्छा आतुर जनों
मिले उन्हें हरि के समीप भेज दें और
इसके लिये जैसा पात्र मिला उसे वैसी
ही शिक्षा देना ताकि फल स्वरूप प्रभु
को प्राप्त कर सके, अधिकारी के अनुरूप
साधन बताते यथा - हिरण्यकशिपु को
भी - ब्रह्मज्ञान उत्पीड़न. कीर्ति को विष्णु भय
इसी से ये देव दानव राक्षस, किन्नर तक
सब से पूजित होते हैं। सभी वेद मंत्रों
के अर्थ उनके लिये नित्य प्रत्यक्ष रहते
हैं अतः प्रभु ने इन्हें जन्मजात ऋषि
बनाया अर्थात् ये देवर्षि कहलाये। लोक
कल्याण ही इनका ध्येय बना रहा है इनके
लिये ये विरोध और भी मैं खटका
देने में नहीं हिचकते। इनके वचनों
पर सदा सबका दृढ़ विश्वास रहा है
और सदा ही इनके वचन सच्चे सिद्ध
हुए हैं "बरु पावक प्रगटाई ससि माहीं।

नारद वचन असत्य नाहीं" (४-७९)
इनका सबसे बड़ा काम है कि जीस
के स्पर्श से कि मूरत कोई भी हो इनके
हृदय में करुणा संचार होकर उसे
परिभाषा का पता देते हैं यथा)
सब लोकों में भटकता हुआ निराश्रित
जयन्त को व्याकुल भाव से देखकर
इनका हृदय द्रवित हो गया और
पुकारकर अपने राम से
छुटकारा का रास्ता बताया" पठवा तुरत
राम पहिं ताही कहेसि पुकारि प्रनत हित
पाही" (३-२)। मेघनाद द्वारा नागपाश में
बंधे राम को मुक्त करने पर गरुड़ को
जब मोह हो गया तब वह नारद के ही
पास गया और नारद ने ही उसे मार्ग
प्रदर्शित किया। शिव के अपमान
सुता से दुःखित मयना को सती देह के
छोड़ शंकर द्वारा उनका त्याग और
दक्ष के यज्ञ में उनका शरीर-त्याग बतलाते
सुनाते हुए" अस जानि संसय तजहु

सिद्धि सर्वदा हैं करी गुना (१-२८) कह कर प्रकाशित किया और मुनि नारद के वचन सब सत्य कर शिरोधार्य किया (१-२८)।

नारद उत्कृष्ट कोटि के ज्योतिषी हैं पार्वती जी की कुंडली हाथ कुछ नहीं देखा सिर्फ आकृति मुखादि देख कर ही बता दिया यह उमा (तपस्विनी) अहोदशिका (अष्टादश) और सुहागिनी। भवचारी शिव की पत्नि होगी। यह और इसके पति अमर हैं। इससे माता पिता यशस्वी होंगे और पतिव्रतायें इसका स्मरण कर अपना व्रत पूरा करेंगी। और स्वयं ही शिव को पति रूप में पाने के लिये तप करने को प्रेरित भी किया एवं सफलता का आशीर्वाद दिया।

शीलनिधि राजा ने श्री प्रभु की कन्या को मुनि को दिखाकर भविष्य जानना चाहा।

वाल्मीकीय रामायण -

बालकांड के प्रारम्भ में वर्णित है कि वाल्मीकी मुनि के पूछने पर नारदजी ने उन्हें संक्षेप में सुनाया (सर्ग १)

उत्तरकांड में वर्णित है कि नारदजी ने रावण को समझाया कि मनुष्यों देवता आदि लोकों को जीतने से ही यमलोक में जाना यम को अपने वश में करो (सर्ग २०) और यमलोक में जाकर यमराज को रावण के आने की पूर्व सूचना दे दी (सर्ग २१)

हे भागवताचार्य देवर्षि नारदजी बताए पथ का अनुकरण करते हुए नित्य निरंतर प्रभु के नाम और गुणों का गान करें एवं परहित की भावना को हृदय में सुव्यवस्थापित करें।

श्री राम जय राम जय जय राम॥

1234

363

10/7/84 जप ले सदा केवल राम रे।
सुमर ले सदा ~~[illegible]~~ राम रे ॥१

कर ले राम चरनन प्रीत रे।
बाकि सब स्वारथ के मीत रे ॥२

छनु छनु देख प्यारे राम रे।
नयनन बसा प्यारे राम रे ॥३

हर जगह देख लिखा राम रे।
हर धुनि सुन राम राम राम रे ॥४

~~हर घटना देख कर राम रे~~
~~हर पल यातक राम कार्य रे ॥५~~
~~रहे चालक राम का हर [illegible] रे~~

हर घटना देख कर राम रे।
रहे चालक राम का हर पल रे ॥५

(364)

14/7/81

जय जय, सारंगधर, जय जय हे।
जय जय, राम राघव, जय जय हे॥

अधमन तारे, पतित पावन, जय हे।
आज सिमित न बने, अप्रतीम जय हे॥

प्रनतपाल, भगतबछल, विभु जय हे।
अकारन दयाल सुभाव, जय हे॥

~~अनु...~~

अनाश्रय अबल पड़ा द्वार, जय हे।
चरन बकसो, कामद प्रभु, जय हे॥

हिये झूलो, करुनानिधान, जय हे।
~~नाचो, रसना रम, राम जय हे॥~~
शंकर रसना रमौ, राम जय हे॥

(1236)

(365)

प्रसिव भेख सिवध्यान कुमाला (व-२च) । टेक

18/7/81

गौर कपुर सम तन मरदन लसही।

श्रावण ससि सेखर कंठ बिरनहि सिसजटी।।

कृष्ण

१ जटन बिच सुरसरी लहरावे।

त्रिनयन श्रवनन कुंडल हलयवे।।

निलकुंठ भुज भुजन उपवित खहि बने।

नरमुंड उर ढक रहे माल्य बने।।

भुज बिसाल कर त्रिसुल डमरू धाजें।

बाघम्बरधारी बसहैं बिराजें।।

ऐसो बाँरो बिकट प्रसिव भेस।

पर पुर्न सिवध्यान हो प्रानुतोष।।

चरनाम्बुज जल पड़ा, प्रकटर हो।
कसुर भुलो प्रभु, मौलिकांक्ष हो।।

'शंकर' शाम मिलादो, कामद हो।
जयति जयति जगद्गुरु सम्भु जयजय हे!

(1238)

संत बानी ① (सं.ले.नं.-32)

२५/७/७ I

कबीरदासजी

(१)

सुमिरन बिन गोता खाओगे।
मुट्ठी बाँधे गर्भ से आये, हाथ पसारे जाओगे।
जैसे मोती परत ओस के, बेर भये झर जाओगे।।
जैसे हाट लगावै हटवा, सौदा बिन पछताओगे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सौदा लेकर जाओगे।।

(2)

तोको पीव मिलेंगे घूँघट को पट खोल रे।
घट घट में वह साँई रमता कटुक वचन मत बोल रे।।
धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसन सों मत डोल रे।।
जोग जुगत सों रंग महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर आनन्द भयो है बाजत अनहद ढोल रे।।

(3)

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहीं चैन रात नहिं निंदिया तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रहट अस डोलै सून सेज पर जनम छिया।।
नैन थकित भए पंथ न सूझै साँई बेदर्दी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरो पीर दुख जोर किया।।

(४)

करम गति टारै नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ग्यानी, सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को, बन में बिपति परी॥
कहं वह फंद कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लैगो रावन, सुबरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप, गिरगिट जोनि परी॥
पांडव जिनके आप सारथी, तिन पर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो, जदुकुल नास करी।
राहु, केतु औ भानु, चन्द्रमा, बिधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भइ साधो, होनी है के रही॥

(५)

जिनके नाम ना है हिये।
क्या होवै गल माला डाले, कहा सुमिरनी लिये॥
क्या होवै पुस्तक के बाँचे, कहा संस्कृत किये।
क्या होवै काशी में बसि के, क्या गंगाजल पिये॥
होवै कहा बरत के राखे, कहा तिलक सिर दिये।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, जाता है जम लिये।

1240

(६)

जब लग नाता जगत का, तब लौं लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै, भक्त कहावै सोय॥
कबिरा गुरु के मिलन को, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय॥

(७)

बैरागी बिरकत भला, ग्रही चित्त उदार।
दोउ बातों खाली पड़े, ताको वार न पार॥
धारन सें दोउ भली, गिरही कै बैराग।
गिरही दासा तनकौ, बैरागी अनुराग॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम।
यामें धोखा कछु नहीं, सरै दोउ को काम॥

(८)

भजु मन जीवन नाम सबेरा।
सुन्दर देह देख जिन भूलो, झपट लेत जस बाज बटेर।
यह देही को गरब न कीजै, उड़ पंछी जस लेत बसेरा॥
या नगरी में रहन न पैहो, कोइ रहि जाय न दुख घनेरा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, मानुख जनम न पैहो फेरा॥

मनुष्य का मुख्य कार्य है भगवत भजन।
नाम जपो निर्भय रहो, सांसारिक कार्य करो तो अवश्य
किन्तु लक्ष्य रक्खो उसी ओर॥

II श्री गुरु नानक देव

①

सुमिरन करले मेरे मना।
तेरी बीति जाति उमर हरि नाम बिना॥
कूप नीर बिनु, धेनु छीर बिनु, मन्दिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिन हीना, तैसे प्राणी हरिनाम बिना।
देह नैन बिन, रैन चन्द्र बिन, धरती मेह बिना।
जैसे पंडित वेद विहीना, तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो, छाँड़ दे अब सन्त जना।
कहे नानक शाह, प्रभु भगवन्ता, या जग में नहिं कोई अपना॥

②

मन की मन ही माहिं रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही॥१
दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्ण मही।
और सकल मिथ्या यह जानो, भजना राम सही॥२
फिरत फिरत बहुते जुग हार्यो, मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरत कहा नहीं॥

(३)

रे मन कौन गति होइ है तेरी।
इहि जग मैं राम नाम, सो तौ नहिं सुन्यो कान।
बिखयन सौं अति लुभान, मति नाहिन फेरी॥१
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिख कीन्ह।
दारा सुत भयो दीन, पगहु परी बेरी॥२
नानक जन कहत पुकार, सुपनै ज्यौं जग पसार।
सिमरत नहिं क्यौं मुरार, माया जाकी चेरी॥३

श्री दादू दयाल जी

(1)

जिनके कारण हमें भगवत् भजन करने को भौतिक सुविधा मिला ने धन्यवाद के पात्र है

(2)

निंदक बाबा बीर हमारा। बिन ही कौड़ी बहै बिचारा॥
कोटि कर्म के कल्मष काटै। काज सँवारै बिन ही साटै॥
आपन डूबै और कौं तारै। ऐसा प्रीतम पार उतारै॥
जुग जुग जीवो निंदक मोरा। रामदेव तुम करो निहोरा॥
निंदक बपुरा पर उपकारी। दादू निंदा करै हमारी॥

(3)

सोई बूझै राम कौं, जो राम सनेही होइ॥
एक मना लागा रहै, अन्त मिलैगा सोइ।
दादू जाके मन बसे, ताकौं दरसन होइ॥

(4)

काचा उछलै ऊफणै। काया हाँडी माहिं।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं॥
आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यह मत सार॥

1244

(५)

हरि भज साफल जीवना, पर उपकार समाइ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पशु पंखी खाइ॥

(६)

हम कसिये क्या होयगा, बिड़द तुम्हारा जाय।
पीछैं ही पछितावहुगे, तातैं प्रगटहु आय॥

(७)

ईहैं जग जीवन सो भला, जबलग हिरदै राम।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम॥

IV रैदासजी

(1)

भगती ऐसी सुनहु रे भाई, आइ भगती तब गई बड़ाई।

(2)

बाह्य पूजा से मानसिक पूजा उच्च है
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप॥

(3)

रैदास कहै जाकै हृदै, रहै रैन दिन राम।
सो भगता भगवंत सम, क्रोध न व्यापै काम।

V श्री समर्थ गुरु रामदास जी
श्री रामचन्द्र जी ने दर्शन देकर इन्हें
त्रयोदशाक्षरी मन्त्र का उपदेश किया था-
॥ "श्री राम जय राम जय जय राम" ॥

(१)

भिक्षा एक प्रकार की निर्भय स्थिति है, इससे महत्ता प्रकट होती है, स्वतन्त्रता मिलती है और ईश्वर प्राप्ति होती है। यह निःस्पृहता का लक्षण है। ऐसा करने से लोगों का सुख दुख मालूम होता है। किन्तु उदर पूर्ति के लिये दीन होकर नहीं माँगना चाहिये।

(२)

प्रभु ही सब का पालन करते हैं मनुष्य तो निमित्त मात्र ही है। ये कड़ सारी प्रभु की ही है।

(३)

भक्त सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते वह तो भगवत्-सामीप्य का ही भूखा रहता है।

(४)

प्रपञ्च तक एक दिन नष्ट होने पर फिर भजन कौन करेगा अतः भजन में लगे रहो।

९। चरनदासजी

(१)

प्रेम बराबर जोग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधिबो, सबही थोथा ध्यान॥
प्रेम छुटावे जगत सूँ, प्रेम मिलावे राम।
प्रेम करै गति और ही, लै पहुँचै हरिधाम॥

(२)

पतित उधारन बिरद तुम्हारो।
जो यह बात साँच है हरिजू, तौ तुम हमकूँ पार उतारो॥
बालपने औ तरुन अवस्था, और बुढ़ापे माँहीं।
हमसे भई सभी तुम जानो, तुमसे कछु छिपनी नाहीं॥
अगनित पाप भये मन माने, नख सिख औगुन धारी।
हेरि फिरि के तुम सरने आयो, अब तुमको है लाज हमारी॥
शुभ करमन को मारग छूटो, आलस निद्रा घेरो।
एक दिन बात भली बनि आई, जब मैं कहायो तेरो चेरो॥
दीनदयाल कृपाल बिसम्भर, श्री शुकदेव गुसाईं।
जैसे और पतित जन तारे, चरनदास की गहियो बाँहीं॥

1249

(3)

यह सिर नवै तो राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट॥

(4)

सोये हैं संसार सूं, जागे हरि की ओर।
तिन कूँ इक रस ही सदा, नहीं साँझ नहीं भोर

(5)

सत्य धर्म भोजन खाइये रहिये नापरि सोय।
ऐसी मानुष देह कूँ, भक्ति बिना मत खोय॥

VII बाबा मलूकदास जी

(१)

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम।।

(२)

दाया कहै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी।

(३)

साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है।
जहवाँ सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है।।१।।
साँच तेरा भक्त, जो तुमको जानता।
तीन लोक को राज, मनै नहिं आनता।।२।।
झूठ नाता छोड़ि, तुम्हें लव लाइया।
सुमिरि तिहारो नाम, परम पद पाइया।।३
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइ कै।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइ कै।।४
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बन्धु है।
कहत मलूकदास, बिना तुम धुन्ध है।।५

1250

पलटूदास जी

(१)

नौकर है सतनाम, नाम की चेरी माया।
जोरू कहवाँ जाय, खसम के कैद में आया॥

(२)

जो मैं कियो न करि सकौं, साहिब करता होय।
करता करावत आप है, पलटू पलटू सोय।

(३)

जप तप तीरथ व्रत है, जोगी जोग अचार।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार।

(366)

27/7/84

जयति जयति अनिलला जयजय हो॥ हे के

पवन सुत प्रिय अति रघुपति के हो।
दुलारे अतिसय जानकी के हो॥ १

हिये सीताराम बसाये हो।
सर्वत्र रामकथा कीर्तन उपस्थित हो॥२

आप सुकंठ विभिसन सीता को।
भरत तुलसि और अनेकों को॥ ३

राघवेन्द्र सरकार मिलाये हो।
अर्जि अनेकों की सुनाये हो॥४

खल, गहन वन पावक आप हो।
सुन शंकर निहार रहा आप को॥

जलादो इस जड़ के अज्ञान को।
याकू दरस चाहूँ अभिलासित दो॥ ६

इन नयनन याकू दरस करादो।
ठुकराना ना किंकर कि बिनति को॥ ७

(367)

30/7/81

किसदास को कृपा कर अपनावो।टेक

माया बस साधन हित नहिं गायौ
दूर आयौ अब काल निअरायौ॥

असरन-सरन सरन नाथ आयौ
अब हृच रख रख जन रसुन कहायौ॥

केवट गीध गनिका मिलहि तार्यो।
गज द्रुपदसुता सुग्रिव काज सार्यो॥

डुबति जुनि नैया प्रभु पतवार धर्यो।
हर्ष दे हिय बस रहूँ रं निहाल करौ

आज ठुकरावो या अपनावो।
मन हैं प्रभु अपने जो दानो॥

१२८५

२/४/४१ प्रसन्न हो आप तब मिल अप्रमित हैं।
सानुकूल रह हिय बस यह दर्श हैं॥

(मैं लेखन तैं 33)

रचना

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरण भवभय दारुणं।
नवकंजलोचन, कंज-मुख, कर कंज, पद-कंजारुणं॥1

कंदर्प अगणित अमित छवि, नव नील-नीरद सुंदरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि, नौमि जनकसुतावरं॥2

भजु दीनबंधु, दिनेश, दानव-दैत्यवंश-निकंदनं।
रघुनंद, आनंदकंद, कौशलचंद, दशरथ-नंदनं॥3

सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर संग्राम-जित-खरदूषणं॥4

इति वदति तुलसीदास, शंकर-शेष-मुनि-मन रंजनं।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं।
(विनय पत्रिका दोहा 45)

(256)

(सं.ले.सं. 34)

७।४।७

सतीविमोह

शंभु और सती का यह चरित्र प्रसंग ही अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं तात्विक सात्विक साधकों के लिये शिक्षाप्रद है कि जब श्रद्धा चंचल हो जाती है तब विश्वास जाता रहता है, विश्वास त्याग देता है। इस प्रसंग में भगवत् इच्छा का प्राबल्य स्पष्ट देखने को मिलता है कि प्रभु जब जहाँ जिससे जो काम जिस प्रकार कराना चाहते हैं ठीक उसी समय उसी जगह उसी को वही काम उसी प्रकार करना पड़ता है। संदेहात्मक बुद्धि नाश का कारण होती है और अनन्य श्रद्धा प्रभु प्राप्ति कराती है। प्रत्येक घटना वर्तमान में तो घटना मात्र ही रहती है किन्तु या तो बीती घटनाओं का फल या हरि इच्छा के कारण होती और भावी घटनाओं का बीज होती है। हरि इच्छा भी अनेकानेक भावी मंगलमय घटनाओं के उद्देश्य से छुपी रहती है।

श्रीरामचरितमानस के मंगलाचरण के दूसरे श्लोक में तुलसीदासजी ने भवानी को श्रद्धा एवं भगवान शंकर को विश्वास रूप कहकर वंदना की है। ऐसे कहते हैं इनके बिना यानि श्रद्धा और विश्वास के बिना सिद्ध गण भी प्रभु-प्राप्ति नहीं कर सकते। भगवान शंकर जब हैं इनकी अर्धांगिनी हुई थी है दक्षसुता सती जी हैं या गिरिजा पार्वती जी।

दक्ष = चतुर, दक्षसुता = चतुराई वाली तर्क बुद्धि है किन्तु गिरिजा (शांति-स्वभाव) हिमराज कन्या है अतः अचल श्रद्धा है इसी अचलता के कारण खोये हुए विश्वास रूपी शिवजी को पा सकती है।

महर्षि अगस्त्यजी (कुम्भजी) रामचरित के पूर्ण ज्ञाता एवं श्रीराम कथा के रसिक वक्ता हैं शिवजी भी रामकथा सुनने इनके पास जाते रहते थे। अगस्त्यजी के प्रति श्री राम के वचन हैं

तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। (3-13)

भगवान शंकर भागवतों में अग्रगण्य
एवं राम-भक्ति के रसिक वक्ता हैं।
अगस्त्य आश्रम में सती के साथ शम्भु
कुछ दिन वास करके अगस्त्य जी से राम-
कथा सुनते हैं और अगस्त्य के अनुरोध
पर शम्भु उन्हें हरि भक्ति सुनाते भी हैं।
कितनी उदात्त कोटि का सत्संग है यह।
इसमें अगस्त्य एवं शम्भु दोनों ही
कई बार वक्ता और कई बार श्रोता
बनते हैं किन्तु सती इस समस्त सत्संग
में श्रोता ही रहती है। निश्चय ही
इस रामकथा में श्री राम का सीता-
वियोग प्रकरण भी आया होगा और
सती ने भी सुना ही होगा। सत्संग समाप्त
होने पर ऋषि से विदा लेकर शिवजी
और सती जी दोनों साथ साथ दंडकवन
होते हुए कैलाश की ओर जा रहे हैं।
उस समय दंडकवन में श्री राम सीता
वियोग जनित प्रलाप कर नर-नाट्य
कर रहे हैं। प्रभु दर्शन पा शंकर

भगवान प्रभु श्री राम के अवतार के
भेदमय प्रसंग को गुप्त रखते हुए 'जय
सच्चिदानंद जगपावन' (१-प्रु) कह
कर अति पुलकित गात होते हुए प्रणाम
करते हैं। इस प्रकार ~~शंकर~~ जगतवंद्य
शंकर भगवान को एक नृपसुत को
सच्चिदानंद सम्बोधन के साथ प्रणाम
करते एवं पुलकित देख कर सती के प्रति
मोहजनित विस्मय हो जाता है और सती
~~[illegible]~~ श्री राम को प्रणाम तक नहीं
करती कारण इस समय सतीजी को श्रीराम
के ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में विमोह घेर
लेता है - यह इनकी चंचलता और तर्क
बुद्धि का द्योतक है कि इतने उच्च कोटि के
सत्संग के तुरंत बाद ही इनका यह हाल
होता है अथवा यह भी हरि की माया
का ही प्राबल्य है।

सत्संग के लिये प्रस्तुत अध्याय में गोस्वामी तुलसीदासजी ने इनके लिये तीन नाम प्रयोग किये हैं ये तीनों ही सहेतुक हैं

"सोइ सती जगजननी भवानी" (१-९८)

<u>सती</u> - इनका नाम है। सती शब्द का अर्थ पतिव्रता है अर्थात् सतीजी उच्चतम कोटि की पतिव्रता हैं। किन्तु ये दक्षसुता हैं अतः दक्ष को पद पाकर प्रभुता अभिमान हो गया था और इसे भगवान शंकर के ईश्वरत्व के प्रति संदेह हो जाने के कारण। चूँकि ब्रह्म सभा में एक बार जब दक्ष आया था, सब खड़े होकर भोले बाबा ने दक्ष का सत्कार नहीं किया था। अतः दक्ष भगवान शंकर का अपमान कर वैरभाववश करता था। इसी प्रकार दक्षसुता सतीजी को भी श्रीराम के ब्रह्मत्व के बारे में सन्देह हो गया। दक्ष शब्द का अर्थ है चतुर सांसारिक बुद्धि होने के कारण सती ने श्रीराम के ब्रह्मत्व की परीक्षा में चतुरता बरती है, और सांसारिक बुद्धि के कारण श्रीराम को ब्रह्म नहीं मान रही हैं। जब शंकरजी के निषेध करने पर भी

सती का मोह नहीं हुआ तब इसी कारण इनके
लिये "दच्छसुता" नाम व्यवहार किया है जिस [illegible] करती है।
"दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना" (१-६२)
"जगजननी" - क्योंकि जगत की उत्पत्ति करती
है। स्वयं पति-भक्ति का कष्ट सह कर जो
जगत का कल्याण करेंगी। इनको मोह कहाँ
ये तो जगत हित के लिये लीला करेंगी इसी
लिये इनके लिये यहाँ "चरित" शब्द का प्रयोग
किया गया। "सतीं जो कीन्ह चरित सब जाना" (१-५४)
भवानी ये भव याने महादेवजी की शक्ति है
अतः भवानी हुईं। भवानी शंकर संहार कारी हैं
ये सर्वज्ञा एवं महामाया हैं। (मा. पी. १-३९)

यद्यपि चतुरतावश पति से कुछ नहीं कहती
हैं तथापि सर्वज्ञ देवाधिदेव महादेवजी से सती
द्वारा श्री राम के प्रणाम नहीं करना एवं इनका
~~[illegible]~~ कि श्री राम के ब्रह्मत्व विषयक मोह
छिपा न रह सका। अतः शिवजी ने श्री राम
के ब्रह्मत्व के विषय में बोध कराने के लिये
अनेक प्रकार समझाया। किन्तु इनके पल्ले
कुछ भी नहीं पड़ा कारण इनके सिर पर

श्री सती जी माया एवं भवानी जी कैलाश ही जब शंभु ने विचारा कि हरि इच्छा और भावी (जिस हरि माया ने ब्रह्मा, शिवादि को)
नहीं सकती है अतः मेरे समझाने से लाभ नहीं
सब प्रकार से (हार कर) थक गये हैं जब इसको गाढ़ संदेह है
तो जाकर विवेक पूर्वक यत्न करके परीक्षा।
क्यों नहीं ले लेती और अपने मुझको मिटा
क्यों नहीं लेती। तुम्हारे लौटने तक मैं
वट वृक्ष तले तुम्हारी अपेक्षा में बैठा
रहूंगा। यद्यपि यह समझ गये कि अब दक्ष-
सुता का कल्याण नहीं फिर भी अशान्त
न होकर राम राम जपने लगे कारण इनका
मन शांत है। यदि अशान्त मन होता तो राम (नाम)
का कीर्तन ही करते कारण जप तो सिर्फ शांत
और एकाग्र मन से ही हो सकता है अशांत
एवं चंचल मन को तो हरि नाम से ही शांति
मिल सकती है। इस समय शंभु ने हरि इच्छा
को प्रबल जानकर उसे शिरोधार्य कर
लिया है अतएव स्वस्थ चित्त शांत है।
"होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै
साखा॥ अस कहि लगे जपन हरिनामा॥ (1-52)
शंभु का यह हरिनाम जपना सिखाता है कि विपत्ति आने पर
शांत चित्त हो प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

इधर सती जबसे शंभु ने "जय सच्चिदानंद
जगपावन" कह कर श्रीराम को प्रणाम किया था
तब से सती मन में तर्क वितर्क कर रही है—
शिवजी मिथ्या नहीं कह सकते उन्होंने "जय
सच्चिदानंद जगपावन" कह कर प्रणाम किया
है यह प्रत्यक्ष रहस्य बना है किन्तु ब्रह्म
तो अजन्मा है अज है अवतार नहीं लेते
पर ये तो देहधारी हैं नृपसुत हैं; ब्रह्म तो
व्यापक है साकार और सब में व्याप्त है
यदि ये ब्रह्म होते तो सीता को कौन चुरा ले
जाता एवं ब्रह्म सब दिशाओं में परिपूरित और
व्याप्त है पर ये तो दिशा दिशा में सीता को
ढूँढते फिर रहे हैं सीता कहीं छुपायी गयी
होती तो इनको जानकारी क्यों नहीं होती
क्योंकि ये सर्व-व्यापक नहीं हैं अतः ये
ब्रह्म नहीं हैं; इनका तो छोटा सा देह है
एवं अयोध्या वासी हैं अतः एकदेशीय
है; ब्रह्म अकल है इनमें पुरारी का मन
साधारणतया नहीं लगा करता और ये तो
अति सुंदर और मन मोहक हैं; ब्रह्म तो

1265

अपनी ही है अपमेद अनिच्छित हैं
किन्तु ये सो धनुर्धर क्षत्रिय हैं निशाचर
वध में रत हैं, बुद्धि तो निर्मल है किन्तु
ये तो पत्नि वियोग में विकल होकर रोते
रोते पागल हो रहे हैं मलिन हैं इन तर्कों
के आधार पर इस निश्चय को दृढ़ करती
है श्री राम ब्रह्म नहीं हो ही नहीं सकते।
इधर वृषकेतु इन्हें ब्रह्म बताते हैं।
विष्णु भी ध्यानस्थान हैं एवं इनकी
अर्धांगिनी श्री श्री जी अति सुन्दर हैं
और विष्णु इतने अज्ञ नहीं कि सीता
को अज्ञ की भाँति खोजते फिरें एवं
श्री जी का विष्णु से वियोग सम्भव
ही नहीं और न श्री जी इनको छोड़कर
किसी दूसरे के पास जा ही सकती हैं फिर
परन्तु ये ढूँढेंगे ही क्यों। असुर इनसे
सदा डरते रहते हैं श्री जी को हरण कर ही
नहीं सकते अतः ये न तो निर्गुण ब्रह्म
ही हैं और न सगुण विष्णु ही फिर
सोचती हैं शंभु की बात झूठी नहीं होती

सकती।.. इत्यादि तर्क-वितर्क मन में उथल पुथल मचाते हुए हैं। बुद्धि भी किनारा नहीं देख पाती। अन्ततः बुद्धि के समझाने का कोई प्रभाव नहीं होता और जब पति परीक्षा की आज्ञा दे देते हैं तब चल पड़ती हैं सती जी रामजी की परीक्षा लेने। (मा.पी. दि १२८-३)

"बुद्ध जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥"
बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥ (१-५०)
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
(१-५१)

बड़ी कठिन समस्या को सुलझाने जा रही हैं अतः क्या उपाय किया जाय कुछ समझ न पड़ा। पति का आदेश "करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी" (१-५२) है विवेक बुद्धि से विचार कर ही इसका तरीका तय करने का किन्तु यहाँ पिता के स्वभाव का असर जनित वितर्क बुद्धि ने तो प्रारम्भ में ही श्री राम के प्रति [illegible]

परन्तु श्रद्धा को पहले ही डिगा दिया
और अब उसी पितृ-हित अहित चतुरता
ने अपना प्रभाव दिखाया और पति
के उपरोक्त सावधानी सूचक आग्रह
को और ध्यान न देकर सती अति
चतुरता पूर्वक निश्चय करती है कि
सीता को खोज रहे हैं अतएव सीता
का रूप धारण कर ही सामने से इन की
तरफ चलकर क्यों न देखा जाय यदि
ये निश्चय ये हैं ईश्वर हैं तो हैं ही नहीं
पर हाँ यदि ये विष्णु होंगे तो सर्वज्ञ
होने के कारण अवश्य जान जायेंगे कि
यह तो सती ही है जिसने सीता का
रूप धारण किया। यदि विष्णु नहीं
हैं तो पहिचान ही नहीं पायेंगे सीता
ही मान बैठेंगे - इस प्रकार परीक्षा हो जायगी।
यह हाल ऐसा है जैसे जब श्रद्धा चंचल
हो जाती है और श्रद्धा चंचल होते ही
विश्वास छूट जाता है और जीव नहीं
करने वाला कर्म भी मुख्य बना कर

बैठता है। सती ~~[illegible]~~ ने सीतापतिकुला का
शिवजी ने उचित वचन में संदेह करना और
पर-स्त्री के वेश धारण कर कर पुरुष
की तरफ जाने ~~[illegible]~~ जैसा तो स्त्रियोचित
मर्यादा के विरुद्ध कार्य सम्पादन
हो गया। जिसके फलस्वरूप सतीजी
ने बाकि शेष जीवन के सत्तासी हजार वर्षों
तक पति परित्यक्ता होकर बिताया।

शंभु सती सहित पंचवटी से उत्तर में हैं
श्रीराम सीता को खोजते हुए दक्षिण की ओर
जा रहे हैं। अतः रघुपति की कुलरोग, ऐश्वर्य को
का परिक्षण करने के लिये श्रीराम से दूर
दक्षिण जाकर सीता का वेश धारण कर
के जिस मार्ग पर श्री राम चल रहे थे उसी
मार्ग पर श्री राम की ओर मुख के राम की
ओर चली आ रही है। यह सत्य है कि
भवानी सती जी त्रिकालज्ञ है बुद्धिमान
है किन्तु परब्रह्म श्री राम मायापति है
जिनकी माया भगवान शंकर और ब्रह्माजी

तक को नचा चुकी है और जीव कोई भी हो परबस है जबकि श्री राम स्वबस (स्वतन्त्र) हैं। "परबस जीव स्वबस भगवंता" (७-७८)
महामाया की माया की पहुँच श्री राम की माया तक कैसे हो सकती है। श्री राम योगेश्वर हैं सहज ही सर्वज्ञ हैं। श्री राम ने सहज ही सती जी की माया को जान कर भवानी को पहचान लिया। सीता वेश धारण के लिये सती को दोषी नहीं समझते कारण जानते हैं कि यह तो मेरी ही माया का प्रबल प्रभाव है जिसने महामाया सती जी पर भी अपना प्रभाव डाला कि सती जी परीक्षा लेने आई हैं नारि स्वभाव वश कपट करके लाज नहीं आई इससे अपने मृदुल स्वभाव वश क्रोध न करके श्री राम हँस कर ही बात करते हैं।

"निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥ (१-५३)

वाणी-निपुण श्री राम हँसकर अति मर्मभरे
गूढ़ वचन बोले "हे माता दाशरथि राम आपको
प्रणाम करता है" जिसका परिचय देते हुए
सबसे पहले प्रणाम करते हैं कारण एक तो सती
परस्त्री हैं अतः मर्यादा पुरुषोत्तम ने मातृ
भाव से प्रणाम किया। प्रभु के वचन सुन
मारे हुए हैं न अतः सती भवानी देखती हैं
अतः इस लिए कि यह मनुष्य प्रभु देवी
को प्रणाम करता है इस तरह पहले पहल
ते सती के मन को अपनी ओर पुष्ट करते हैं।
पुनः फिर बार प्रश्न करते हैं कि शिवजी
जिनकी ध्वजा में वृषभ यानि धर्म का
चिन्ह अंकित है और आप अकेली इस
वन में क्यों विचर रही हैं। इस प्रश्न में
प्रभु श्री राम ने सब कुछ कह डाला यानि
मैं आपको पहचानता हूँ आप तो शंकर-
पत्नी हैं आप पतिव्रता और ... उनके
छोड़ के हैं आपके पतिव्रत धर्म की
ध्वजा भी तो भगवान शंकर ही हैं उनके
वचनों को अप्रमाणित करके परीक्षा को

आपका रूप धरकर वन में स्वेच्छापूर्वक अकेली फिरती हैं
तो क्या बावले वे हैं। मुझ[illegible] के कारण आपने
पति को त्याग दिया है अथवा शंभु को
कोई चूक हो गया। सो आप वन में
ढूंढती फिर रही हैं। पर स्त्री का रूप धारण
करना एवं पति से अलग होकर अकेली
फिरना आपके पातिव्रत धर्म के विपरीत
अधर्म करती हैं। मेरी पत्नि का वियोग तो
लीला हेतु मेरी इच्छा से ही हुआ है किन्तु
आपने तो पति वचन को अमान्य कर अकेली
फिरना आपने आप स्वीकार किया। हम और
भगवान शंकर दोनों एक पत्नि व्रत हैं आप
शंकरप्रिया (पार्वती) का रूप स्वीकार नहीं
कर सकते एवं चूंकि आपने कुछ समय के
लिये ही सीता का रूप धारण कर लिया है
अतः अब आपके इस रूप को शंभु भी
शायद अब स्वीकार नहीं करेंगे। जब
श्री राम ने इन्हें प्रणाम किया तब सती
लज्जित हो गयी कि मेरे तो यह क्या अनर्थ हो
गया कि पति वचन की अमान्यता कर

अनुचित परीक्षा लेकर पति से झूठ को
प्रकाशित कर दिया। आई की ठोकर पर मैं०
स्वयं ही ठगी गयी। अति संकुचित हो
गयी और सती ने सीता का रूप तजकर
अपना सती का रूप धारण किया। फिर
जब प्रभु ने मर्मभेदी गूढ़ वचन कहे
तब ~~सती~~ सर्वज्ञा ने सब समझ लिया
और भविष्य में पति-त्याग की आशंका
से अत्यंत ही डर गयीं और शोकग्रस्त
हो महेश की ओर चलीं। जब श्रीराम ने
अपना परिचय देते हुए प्रणाम किया एवं
उन्हें शंकर-प्रिया की तरह सम्बोधन किया
तब सती का यह भ्रम सा नष्ट चूंकि
श्रीराम नृपसुत हैं और सोचा कि वे
ब्रह्म तो हो ही नहीं सकते विवशता होंगी
कारण विशेष भी से सर्वज्ञ हैं
अतः अब भी सती ने श्रीराम को
प्रणाम नहीं किया।

प्रभु ने विचारा सती मेरे सद्भाव आई
हैं हैं चाहे कपट भाव से ही किन्तु आई हैं
सो हैं अब तक मेरे ब्रह्मत्व के संबंध में

इसको मुमुक्षुओं का ज्यों लगा हुआ ग्राही यह मुख लिये हुए यह लौट न जाय इसका ख्याल करना चाहिये। "सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।" (सु.-44) अतः अपना ब्रह्मत्व बताने के विचार से प्रभु दक्षिण की ओर (आयदिशा में) जाती हुई सती के मार्ग में प्रकट हुए कारण संकोच के कारण सती श्रीराम की तरफ पीछे मुड़ कर भी नहीं देख रही है और अतिशय चिन्ता के कारण इधर उधर भी नहीं देख रही है अतः सती के मार्ग में ही प्रकट हुए ताकि सती उन्हें देख लें क्योंकि श्री राम के सिवाय अन्य कोई भी श्री राम के असली ऐश्वर्य को नहीं दिखा सकता और जाने बिना प्रेम भी नहीं होता।

"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।" (अ.-126)
"जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।" (उ.-88)

सती के आगे से सती की ओर दक्षिणाभिमुख करके प्रभु चलने लगे। अतः आगे श्री राम जी बीच में सीता जी और पीछे लक्ष्मण जी सती को दक्षिण की ओर जाते हुए दीख पड़े। अब से

सती को चक्कर में पड़ गयी कि अभी अभी तो मैं राम लक्ष्मण पीछे छोड़ आयी हूँ और अब ये सामने से कैसे आ रहे हैं और उस समय तो सीता भी थी नहीं इतनी जल्दी कैसे मिल गयीं। अतः संदेह मिटाने के लिये पीछे मुँह घुमाकर देखती हैं तो उधर भी तीनों दक्षिण की ओर जाते दीखते, चलने का आगे पीछे वाला क्रम एक ही था अतः इस बार पहले लक्ष्मण फिर सीता और अंत में राम क्रमशः इन तीनों की पीठ दीख पड़ी -

"सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥"
(दो- ५४)

उत्सुकता और ज्यादह की ऊपर नीचे दायें बायें चारों ओर दृष्टि डाल रही हैं अति संकोच की दृष्टि कहीं भी स्थिर नहीं रख रही हैं यानि बड़ी चंचलता के तेजी के साथ दृष्टि इधर उधर चारों तरफ दौड़ा रही है महामाया। सभी जगह एक ही साथ प्रभु श्री राम को देख रही हैं किन्तु अबकी बार भिन्न दर्शन मिल रहे हैं -

"जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥
सती बिधात्री इंदिरा देखीं। अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप॥
"देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव-चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहीं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥"

इस बार प्रभु बताते हैं कि मैं सिर्फ निर्गुण रूप
से ही नहीं बल्कि सगुण रूप से भी सर्व-
व्यापक एवं सर्व-पूज्य एवं पूजित हूँ; मैं
शक्तिमान हूँ और मेरे सारे सेवक भी शक्तिमान
हैं; न तो मुझसे शक्ति का वियोग होता है और
न मेरे सेवकों का ही; यह सीता विरह प्रलाप तो
सिर्फ लीला मात्र ही है राम सीता लक्ष्मण
का तो नित्य-संयोग है; मैं स्वतंत्र एक रूप
हूँ बाकि सब परतंत्र हैं; मैं शुभाशुभ कर्मों
से निर्लिप्त हूँ बाकि सब कर्मफलानुसार पाते हैं

अभी तक तो राम लक्ष्मण सीता को दक्षिण की ओर
जाते हुए देखा था पर इस बार के दर्शन में श्री
राम सभी जगह सिंहासन पर बैठे हैं वे
श्री राम लक्ष्मण सीता को सभी जगह एक ही
वेष में देखा। यानि पार्वती जी नहीं समझती थी
अनेक रूप जैसा का वैसा। बहुत से राम
लक्ष्मण सीता देखने पर सबके रूप और
वेष एक से थे। जहाँ जहाँ श्री राम लक्ष्मण सीता
को देखा वहीं वहीं सब सुनते मुनि और ब्रह्मादि देवों
के चरणों में वंदना करते एवं सेवा करते
हुए देखे सभी के साथ अपनी अपनी शक्तियाँ
देखीं सभी शक्तियों का रूप और श्रृंगार
अपने अपने पतियों के जैसा ही था ताकि
पहचानने में अनुविचार न हो* सिर्फ दंडक
वन के ही नहीं सारे संसार के चराचर सब प्रभु
की वंदना सेवा करते दीखे। सब देवों को
त्यागकर श्री राम का ही भजन करते हुए सिद्ध
और ऋषि मुनि दीखे। शिव जी को वंदना
सेवा करते दिखाकर बताया कि जिन शिव को
तुम सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ मानती हो वही

शिव राम से बढ़कर प्रभु मानते हैं एवं हम
सतियों को शिव सदैव चरण वंदन करते
दिखाकर जताया कि सभी ये राम भक्त हैं
सिर्फ एक तू ही राम विमुख रही। विष्णु
को लक्ष्मी जी सहित चरण वंदन करते दिखाया
कि तुमने मुझे जिन विष्णु का रूप मान लिया
था वही विष्णु लक्ष्मी सहित भी वंदना
उपासना करते हैं * प्रकृति एक परब्रह्म राम
ही स्वतंत्र है बाकि सब इनके अधीन हैं
श्री राम शुभाशुभ कर्मों से निर्लिप्त हैं बाकि
कर्म फल के अनुसार पाते हैं। श्री राम
का यह ऐश्वर्य देख सती अत्यन्त ही
भयभीत होकर (कांपने लगी) आंखें बंद करके मार्ग में
(जहां की तहां) ही बैठ गई। अब आंख खोलती है तो
तब कहीं कुछ भी नहीं है। अब
तो सती ने श्री राम को परब्रह्म मान लिया
बारबार श्री राम को प्रणाम करके शीघ्र
की ओर चल पड़ी। सती ने घोर अपराध कर
डाला अतः प्रभु के ऐश्वर्य को देखकर
प्रसन्न होने की जगह अति भयभीत हो रही है

शंभु ने तो पूर्ण सावधानता रखकर विवेक
पूर्वक सीतास्वरूप सती का त्याग करने का आदेश
दिया था किन्तु सती ने पूरे अविवेक [illegible]
वश सीता का स्वरूप ही धर लिया अतः शंभु
के क्रोध की आशंका से अत्यन्त डरी हुई सती
जा रही है। मन में बड़ी भारी उथल पुथल मची
हुई है कि पति पूछेंगे कैसे क्या हवाल तो
क्या उत्तर दूँगी- यह [illegible] सोचती हुई सुलझा
भी न पायी थीं कि शंभु के पास पहुँच चुकी।
भगवान को यह विश्वास है यह सब श्री हरि की
इच्छानुसार ही हुआ है अतः सती पर उनको
लेश मात्र भी नहीं है किन्तु उनको ऐसा
विश्वास है कि अपने दोष को छिपाने के
लिये सती परीक्षा-विधि सही नहीं बतायेगी
अतः हँस कर पहले ही सावधान करते
हुए पूछते हैं। कि तथ्य सत्य बताना किस
प्रकार परीक्षा ली, और जीत तुम्हारी हुई या मेरी।
हरिमाया एवं भावी यहाँ भी महामाया पर
हावी हो जाती हैं अतः कहीं पति मुझे
त्याग न दें इस भय से ही सारा रूप छुपा

सबै प्रभु श्रीराम के ऐश्वर्य प्रकट की बात देवों को छिपाती हुई झूठ कह रही है कि आप का वचन मिथ्या नहीं है। उसने अतः कुछ भी परीक्षा नहीं ली आपकी तरह ही प्रणाम करके चली आई। इस सती ने पहले से कर्म द्वारा श्रीराम से कपट किया था और पुनः मनसा वचन द्वारा शंकर भगवान से कपट कर बैठी। श्री राम योगीश्वर हैं अतः बिना ध्यान लगाये सहज ही में कपट जान लिया था किन्तु शंकर भगवान योगीश्वर हैं अतः उसे जानने के लिये उन्हें ध्यान लगाना पड़ा।—

"प्रभु प्रभाउ जानत सिवभीरा। सती कपटु जानेउ सुरस्वामी॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सब जाना॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहवा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥

सर्वज्ञ भगवान शंकर ने सब कुछ जान लिया सती की छिपाने की चेष्टा एकदम व्यर्थ रही। शिवजी ने विचारा इस घटनाचक्र में

हरि इच्छा, हरि माया एवं भावी तीनों के वश है नाच नचाता है यही सर्वथा निर्विवाद है शिवजी का विश्वास है—

"बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥" (1-124 क)

"प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥" (7-62)

भगवान शंकर हृदय में विचार करने लगे कि यद्यपि सती अत्यन्त पवित्र पतिव्रता है और तन से प्रेम करने से पातिव्रत्य भंग नहीं होता क्योंकि श्री रामजी ही जीवमात्र के सच्चे पति हैं, सती का तो उनके चरणों में परम पवित्र प्रेम है अतः सती त्याग के योग्य नहीं है किन्तु सीताजी मेरे इष्ट श्री राम की वल्लभा होने के कारण मेरी माता हुई; और सती सीता का रूप धारण कर इस भाव से प्रभु के पास गयी कि देखो मैं आ गयी अब विरह विलाप क्यों कर रहे हो, मैं तो तुम्हारी प्रेम परीक्षा हेतु छुप गयी थी, अतः सती का यह तन मेरे लिये माता तुल्य हो गया अब इस तन को स्त्रीभाव से ग्रहण से महापाप होगा। पतिव्रता को

त्यागना अनुचित है एवं ग्रहण करने से भक्ति के शुद्ध मार्ग में धक्का लगेगा अतः वह धर्मसंकट में पड़े हुए शम्भु ने उनके इष्ट श्री राम चरणों में मानसिक प्रणाम कर

प्रार्थना की प्रभु आप स्वामी हैं सेवक को उचित कर्तव्य की प्रेरणा करें कि मैं क्या करूँ। (सेवक जब संकट में पड़ता है तब स्वामी ही का स्मरण करता है; शुद्ध प्रेम भाव से स्मरण करने से प्रभु अवश्य सेवक का दुख हरते आये हैं) हुआ भी ऐसा ही कि प्रभु को स्मरण करने से भगवान शंकर के हृदय में यह प्रेरणा उठी 'जीवात्मा तो अविनाशी है केवल देह ही नाता होता है सती ने इस देह से सीता रूप धारण किया है अतः सती के इस देह में पति भाव नहीं रखा जाय। (मा. पी. ११४)। अतः सती का मानसिक त्याग कर दिया।

"सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥
तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥"
(१-५७)

आकाशवाणी से यह जानकर महेश ने मानसिक संकल्प कर लिया है तब सती ने बहुत सकुचाकर हृदय से संकल्प जानने का प्रयत्न किया। किन्तु कृपासिन्धु शिव ने कुछ भी भेद नहीं बताया। क्योंकि शंभु को बहुत प्रेम करते थे और सती भी उनकी परम भक्त थी अपने भक्त के हृदय में दुःख हो यह उन्हें असह्य था। सर्वज्ञ सती भवानी जान गयीं कि पति ने त्याग दिया व्याकुल हो उठीं किन्तु अपने अपराध के कारण कुछ कहते नहीं बन पड़ा।

संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी॥
(१-५८)

कृपासिन्धु शंकर भगवान

सती जी शंभु की अनन्य भक्त हैं और परम पवित्र सर्वज्ञ हैं फिर भी शंकर जी द्वारा त्याज्य हुई इससे उनकी अपेक्षा तड़प उठी और कृपासिन्धु भगवान उनकी अन्तर्वेदना से सिहर उठे किन्तु अभी सती के देहत्याग का समय बहुत दूर है; तारकासुर का वध करना है किन्तु अभी तो उस का जन्म ही नहीं हुआ है; अभी पार्वती के अवतार का समय आया।

ही नहीं है; श्रीराम से कपट का कार्यफल भी
सती को भोगना है अतः कहीं सती को
पतिपरित्याग के कारण देह त्याग न दें
इन सब कारणों से अभी सती इसी देह में
रहें यह विचार के शंभु ने सत्तासी हजार
वर्षों की दीर्घ समाधि लगाकर सती के
दुख के नाश में लग गये। इस अवधि में
प्रजापति दक्ष ने यज्ञ रचा जिसमें शिव को
छोड़ कर अन्य सब देवताओं को निमंत्रित
किया। सती पति परित्याग से अत्यंत दुखी है
और कुटुम्बजन के लिये पिता के यज्ञ में जाने
की इच्छा हुई और समाधि टूटने पर शिव जी
से आज्ञा माँगी उन्होंने बहुत सा मना किया
कि वहाँ जाने से तुम्हारा कल्याण नहीं है
किन्तु यहाँ फिर हरि इच्छा और भावी
प्रबल हो गयी — सती अत्यन्त हठ करके
दक्ष-यज्ञ में चली गयीं किन्तु वहाँ जाकर
जब शंभु के लिये अंश न देखा तो देव
समाज को यहाँ देवजी का इतना घोर
अपमान सहन नहीं कर सकी वे

कारण अपने दक्ष संभूत देह को योगाग्नि में
भस्म कर डाला और इस तरह पति-त्याग
रूपी कुबुद्धि से छुटकारा पाया। सती उच्च
कोटि की पतिव्रता है अतः मरते समय
श्री हरि को नमस्कार कर वर मांगती हैं कि
जन्म जन्मान्तर में भगवान शंकर ही मेरे
पति हों। मृत्यु समय की मांग तो अन-
इत काल काल से पूरी की जाती है अतएव
से उनकी यह वाञ्छित पूरी की और
हिमगिरि के यहाँ गिरिजा पार्वती देह
प्राप्त कर जन्म लिया –

"सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिवपद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥" (१-६५)

चूँकि इस बार पर्वत कन्या है अतः गिरिजा
के हृदय में अचल अचल श्रद्धा है। भगवान
शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के लिये हजारों
वर्षों तक घोर तपस्या की, सप्तर्षि तक के
बहकावे में न आकर उन तक को फटकारने में
बाज न ही आई और फलस्वरूप अन्त में
भगवान शंकर के वाम भाग में स्थान प्राप्त

कर एवं भी पूर्व जन्म की साधना पूरी की एवं षडानन की जननी बनी जिन्होंने तारकासुर का वध किया। एवं गणेश की जननी बनी जो श्री राम नाम पर अटूट विश्वास रखने के कारण आज तक देवताओं में प्रथम पूजित होते हैं।

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥ (१-१९)

इस प्रकार दक्ष-संभूत देह नाश द्वारा दक्ष से प्राप्त चतुरता, वितर्क बुद्धि और श्रद्धा की चंचलता नाश होकर गिरि-संभूत देह में दृढ़ श्रद्धा का प्रबलतम होता है तब दृढ़ श्रद्धा और विश्वास के संयोग से ही तत्व की प्राप्ति होती है जो कि राम चरितमानस के बाल काण्ड के दूसरे श्लोक में गोस्वामी जी द्वारा गाये हैं। अटल श्रद्धा ही सम्पूर्ण प्रकृतियों का नाश कर प्रभु प्राप्ति कराती है।

प्रत्येक घटना वर्तमान में तो घटना मात्र ही होती है किंतु उसमें कई भावी घटना का बीज रूप ही होती है। पर कुछ श्रीराम

के सीता विरह पुलाम जिनकी ही भावी
घटनाओं का कारण बन गईं यथा
सती विछोह जिसके फलस्वरूप
दक्ष-यज्ञ ध्वंस, सती का देहत्याग,
पार्वती का जन्म और प्रचंड तप,
कामदेव का अनंग बनना, पार्वती-
शिव विवाह, षडानन का जन्म,
तारकासुर का वध, गणेश जी का जन्म
एवं सम्पूर्ण देवताओं में अग्रपूज्य होना,
कामदेव का द्वापर में श्रीकृष्ण के
पुत्र रूप में जन्म इत्यादि इत्यादि
घटनाएं घटनी हैं। इसीलिये श्रीराम
ने अपनी माया के वश करके सतीजी
को विछोह में डाल कर पति की आज्ञा
की अवहेलना कराई और सीता
का रूप धारण कराया।

इस सती चरित के कारण सती जी
की पातिव्रत्य पर शंका निर्मूल है और
अद्यापि [illegible]। श्रीरामचरितमानस में
ही हिन्दू सिद्धान्तों पर अवलोकन

करने से इस शंका की पुष्टि ही नहीं हो जाती है और यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यह सब श्री हरि की इच्छा से ही तो हुआ है :-

सर्वप्रथम सती श्री रामजी के भाव -

"निज माया बलु हृदय बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी" (१-५३)

भगवान शंकर जी के विचार -

"बोले बिहसि महेसु हरि माया बलु जानि जियँ ॥ (१-५१)

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥ (१-५६)

स्वयं सती जी की भावना - इतने दीर्घकाल तक पति-परित्याग के मानसिक संतापों को सहन करती रहने पर भी ज्यों ही पिता के यज्ञ में पति का भाग न देख कर पति अपमान को न सह सकने के कारण अपने शरीर का अग्नि दाह और साथ ही जन्म जन्मान्तरों में उन्हें भगवान शंकर को पति रूप में प्राप्त करने का वरदान मृत्युकाल में भी राम से मांगना उनके हृदय की शुद्धता एवं महा देवत्व

के इस प्रसाद केवल प्रकार अनुसार है। यही नहीं पुनर्जन्म में पार्वती तन से भी इस शंभु-प्रेम की कितनी गहरी छाप है कि जब नारद ने इनके भावी पति का वर्णन किया उस समय इनको पुनः कितना आनंद होता है "सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥ नारदहूँ यह भेदु न जाना (१-६८) जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। (१-६८)" और नारदजी इनके विषय में भविष्यवाणी करते हैं —

"जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं" (१-७०)

और नारदजी कहते हैं —

"अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर मा" (१-७१)

सप्तर्षियों के प्रति पार्वतीजी के वचन हैं

"अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥
जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥"
"हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥"

पार्वती-जननी मयना द्वारा भगवान शंकर से सती तन में किये गये अपराधों के लिये क्षमा याचना करने पर महादेवजी मातु को बहु

विधि रहस्य कर विदा करते हैं इसमें हरि इच्छा की प्रबलता ही लक्षित है—

"कहेहु सकल प्रभु करुना हेतु प्रसन्न करइ देहु (१-१०९)
जेहि बिधि संभु ब्याहु समुझाई (१-१२४)

श्री रामजी पार्वती से विवाह करने के लिये शंभु से अनुरोध करते समय कहते हैं—

"अति पुनीत गिरिजा"

विवाह के पश्चात पार्वती जी महादेव जी के समक्ष एक कहती हैं "तव कर अस बिमोह अब नाहीं" (१-१०५) एवं श्री राम-कथा सुनने की प्रबल इच्छा प्रकट करती हैं जिसके फलस्वरूप भगवान शंकर राम कथा सुनाते हैं और इस कलिकाल में असंख्य प्राणियों को इस राम-कथा-सुधा-सागर की अमृत की बूंदें मिलती रहती हैं। अतः अब "जय जय जगदंबिके भवानी" कह शत शत प्रणाम करते हुए विश्राम किया जाय।

२५/४/८१

राघव, कल्पतरु चरन आपको।
अकारन दयाल सुभाव आपको।।

साधनहीन अघपुञ्ज पर जन आपको।
तड़फैं/तरसैं दृग प्यासे दरस आपको।।

लालसा हिय झुलाऊँ आपको।
रमा दो रसना नाम आपको।।

प्रभो, महादानी नाम आपको।
जनम जनम रहूँ सेवक सिर्फ आपको।।

राम रट हिय झुलाऊँ आपको।
कह दो संकरें दास आपको।।

(1290)

२५।८।४ स्वभाव राघवकौं

मधुर कैंसो स्वभाव मधुरेश श्रीराम को।
अकारन कृपाकर अपनाते आरत को।।

सब कसुर भूल अपनाते सरनागत को।
अपनाये जैसे सुग्रीव विभीसन को।।

देते आये बड़ाई अपने जनन कौ।
करवाते सभा बनरन समरतैंना को।।

रखते न भेद नर नारि जिव ऊँच निच को।
सिख कृपा की, चख खाये जुठे बेरन को।।

रखते आये सदा भगतन की रुचि को।
केवट रुच राखी, सखा बनाये गुह को।।

पनहि भरत को दै, नंगे पग आये वन को।
सिर्फ सुमरन से, तारते प्रियजन सबु सब को।।

तारे व्याध अहल्या जनक विश्वामित्र को।
खर दुखन तार, पिथि रावन कुम्भकर्ण जैसे को।

करते रहते सतत, जो ध्याये जन को।
पांडव रक्षा किन्हि, बन सारथि अरजुन को।।

घन में कष्ट हरें, सुन जन-आर्त-पुकार को।
बचायी द्रुपदि लाज, व गज की जान को।।

सुधारक नाम, तारन स्वभाव आपको।
कृपा स्वभाव, कृपासाध्य दरस आपको।।

भूल भय अब, बनसो आपकी किरपा को
कृपा बरसा, दो दरसन जन 'संकर' को।।

(२४२)

कृपासिन्धु रे। (३७।)

8/9/81 करो कृपा जन पर ।। टेक।।

कृपाल कौन रघुबीर तुम सम।
जनरञ्जन दूसरो कौन तुम सम।।

तोहे तोसे जन बन बन फिर फिर।
[illegible] परलखाये [चरण] जा सुरसरि तिर।।

तोरे जन प्रभु कर कृपा कर।
पुरि प्रास धाय पावे घर धनु सर।।

साधनहीन गरिब कौन मो सम।
गरिब निवाज कौन प्रभु तुम सम।।

भूलो नियम कर्मफल बैर संकर।
तजो बनियापन बैर संकर।।
दे दरस प्रभु कर कृपा जनपर।।
भूलो हिय प्रभु कर कृपा जनपर।।
रमो रसना प्रभु कर कृपा जनपर।।
बसो दृग प्रभु कर कृपा जनपर।।

संत साखी ②

① प्रेमहरि को रूप है, वै हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय दो मैं लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप॥ रसखान

② चाखन चाहै प्रेम रस, राखन चाहै मान।
एक म्यान में दो खंग, देखी सुनी न कान॥

③ कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर को दाझनो, मोपै सहा न जाय॥

④ जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जामै मासु॥

⑤ जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिनु प्रान॥

⑥ बिना वासनाओं का क्षय हुए, इस विषय का ज्ञान नहीं किया जा सकता। *

✓ ⑦ बिना अनुरागी हुए कोई हरि भक्ति का अधिकारी भी तो नहीं बन सकता।

✓ ⑧ ईश्वर "धर्म" इन दो अक्षरों पर बुद्धिवादियों का विश्वास नहीं होता अतः इसके पीछे रचे गये घूम फिरकर सब यही कहते हैं "विश्वास करो"।

९ करतल सौं ताली देत, राम मुख बोली।
बस जली लुटत पातक, पाप पुंजों की होली॥

१० प्रेम दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहुँ टपकैं नैन॥

११ जनम जनम के बीछुरे, हरि अब रह्यो न जाय।
क्यों मन कूँ दुख देत हो, विरह तपाय तपाय॥
बौरि हुँ चितवत फिरूँ, हरि आवैं केहि ओर।
छिन उठूँ छिन गिर पडूँ, राम दुखी मन मोर॥

१२ कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीति।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत॥

१३ हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलै, तो कौन दुहागिनी होय॥

१४ गृहस्थी को धर्म पूर्वक गृहस्थाश्रम में रहते
रहते हुए, निरंतर हरिस्मरण करना चाहिये।

"(गौरांग)"

१५ वैष्णवों में जाति पाँति का भेद नहीं रहते दिन
हरि स्मरण और हरि कीर्तन करना ही कर्तव्य
है। परहिंसा, परद्रोह, पर स्त्री संसर्ग महा
पाप हैं - सर्वदा परित्याज्य हैं - गौरांग।

१६ आत्मघात से क्या हो जायगा। दुःखों से तो
छुटने के नहीं, उलटा और पाप लग जायगा।

(१७) बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानि के मोहि।
हिरदे से जब जाइहो, मरद बदौंगो तोहि॥ सूर

(१८) सदा संघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान।
सो तू बिसर्यो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान॥ सूर

(१९) प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥ सूर

(२०) मनुष्य भगवान को भक्ति द्वारा ही प्राप्त करता है
भक्त भगवान से तदाकार नहीं होता किन्तु
पृथक रह कर आनन्द का उपभोग करता है

(२१) तजो मन, हरि बिमुखन को संग।
जाके संग कुबुद्धि उपजति है, परत भजन में भंग॥ सूर

(२२) सुनिये सब की करिये मन की
लहिये रस प्रेम के सागर में।
सब हेत ते यों रहिये
जैसे नारि को चित गागर में॥ हरिदास

(२३) जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥ तुलसी

(२४) सो जननी सो पिता सोई भ्रात, सो भामिनि सो सुत सो हितु मेरो
सोई सगो सो सखा सोई सेवक, सो गुरु सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो
जो तजि गेह को देह को नेह, सनेह सो राम को होइ सबेरो॥
तुलसी

(1296)

(25) मीराबाई

(क) हे री मैं तो प्रेम दिवानी,
    मेरा दरद न जाने कोय।।
सूली ऊपर सेज हमारी,
    किस विधि सोणा होय।।
गगन मंडल पै सेज पिया की,
    किस विधि मिलणा होय।।
घायल की गति घायल जाणै,
    जो कोई घायल होय।।
जौहरि की गति जौहरी जाणै,
    की जिन जौहर होय।।
दरद की मारी बन बन डोलूँ,
    बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा के प्रभु पीर मिटैगी,
    जब बैद साँवलिया होय।।

(ख) राम नाम रस पीजे मनुआँ राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसङ्ग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजे।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से बहाय दीजे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रँग में भीजे।

(ग) प्रेम और विरह ही प्रभु-प्राप्ति के साधन हैं

(२४) म्हाने चाकर राखोजी, गिरधारी लाल चाकर राखोजी ।।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, गोविन्द लीला गासूँ ।।१
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातां सरसी ।।२
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजन्ती माला ।
वृन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला ।।३
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी ।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्बी सारी ।।४
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करने सन्यासी ।
हरी भजन कूँ साधू आये, वृन्दावन के वासी ।।५
मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा, हृदे रहोजी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हें, प्रेम नदी के तीरा ।।६
(२५) जाको राखे साइयाँ, मारि न सकिहै कोय ।
बार न बाँका करि सके, जो जग बैरी होय ।।
(२६) प्रभु स्मरण चाहे ध्यान पूर्वक करो या दुखों से दुखी होकर, दोनों दशा में परमानंद प्राप्त होगा

(1298)

(28) नरसी मेहता –

"वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाणे रे
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे
सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे
राम नाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे
वणलोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैंयो तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे

(29) बिना हरि शरण में गये सच्ची शान्ति कभी नहीं मिलती है जी।

तुकाराम

(30) हरि नाम का चिन्तन, भजन, कीर्तन से सभी पाप दूर भाग जायेंगे। कुछ भी अशुभ शेष नहीं रहेगा तब कुछ सम्भव हो जायगा।। तुकाराम

✓ (31) प्रभो! यदि मेरे कर्मों की ओर देखोगे तो तुम्हारा दयामय नाम सार्थक कहाँ हुआ। फिर इसमें आपका उपकार ही क्या है। मुझे तो एक मात्र तुम्हारी ही कृपा का सहारा है।

तुकाराम

(३२) प्रेम में ~~[illegible]~~ नियम नहीं। सिर्फ सच्ची लगन की आवश्यकता है। रसखान

(३३) प्रभु और प्रेम एक हैं। रसखान

(३४) ~~प्रेम [illegible]~~

(३४) हरि के सब आधीन हैं, हरी प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपु ही, याहि बड़प्पन दीन।। रसखान

(३५) जेहि बिनु जाने, कछु हि नहिं जान्यो जात बिसेस।
सोई प्रेम जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस।। रसखान

(३६) मन तो एक ही है इसे हरि भक्ति में लगा लें या सांसारिक व्यवहार में। दोनों का एक साथ नहीं हो सकते। मोरारी बापू

(३७) नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रत दान।
मात भरोसे रहत है, ज्यौं बालक नादान।। दया

(३८) जब ते अलख के बीछुरे, हरि सुन्दर सुखधाम।
ज्यौं मन कूँ दुख देत हैं, बिरह तपा सतयाम।। दया बाई

(३९) सोवत जागत एक पल, नाहिन बिसरूँ तोहिं।
करुनासागर दयानिधि, हरि लीजै सुधि मोहिं।। दया बाई

(४०) तीन शत्रु – कामिनी, कांचन, अभिमान। रामकृष्ण परमहंस

(४१) सज्जनों का सहवास करो पर कुजनों से चार कदम दूर रहो यद्यपि सभी ईश्वर रूप हैं। उपकार करके भी आभार दिखाओ पर अपकार करो मत।
रामकृष्ण परमहंस

1-300

(४२) एक हाथ से दुनियाँ के सब काम करो और दूसरे हाथ से प्रभु के चरणों को दृढ़ता से पकड़े रहो। रामकृष्ण

(४३) माह धाम और श्मशान में मैं चैतन्य स्वरूप हूँ। रामकृष्ण

(४४) क्षमा ही सदस्त्रियों की पहचान है। सज्जन का रोष और पानी का बबूला नहीं रहता। रामकृष्ण

(४५) दाद को जितना खुजलाया जाय उतना ही अच्छा लगता है इसी तरह भक्त भी प्रभु के नाम-गुणगान और स्तुति गाने से तृप्त नहीं होते किन्तु उन्हें अधिकाधिक उत्तेजित होते हैं। रामकृष्ण

(४६) आत्म समर्पण से सुगम कोई साधन नहीं। यानि अपने मन में किसी बात का अभिमान मत करो। रामकृष्ण

(४७) ताली बजाकर कीर्तन से मन के बुरे भाव दूर भाग जाते हैं। रामकृष्ण

(४८) बच्चे के समान होना ही साधक का लक्ष्य है। रामकृष्ण

महाप्रभु जगद्बन्धु -

निचे लिखे निषिद्ध (वर्जित) हैं: -

कुभक्ष्य भोजन, कुस्थान गमन (जाना) कुदृश्य देखना, कुस्पर्श छूना, कुवाक्य बोलना, कुभाव भ्रमण, कुनियम पालन, कुविषय सुनना, कुदान लेना, कुसंग करना, माँस खाना, तेल मलना, भारी भोजन करना, अधिक और वृथा बोलना, वृथा तर्क करना और सुनना, झूठ बोलना, गंदा जल पीकर तेज चलना, वृथा परिश्रम और भ्रमण, जीव हत्या, परस्त्री की ओर देखना, मद्यपान, जुआ, परपीड़न किसी की भर्त्सना, दूसरे के बिछौना पर सोना कपड़ा पहनना, और आसन का व्यवहार।

(1302)

(372)

16/9/8 श्री दशरथ नन्दन

श्री राम जय राम जय जय राम। टेक

१६ मात्रा रघुपति राघव रघुबीर राम।
पतित पावन जय श्री सीताराम॥१

रघुनंदन रघुबीर राजा राम।
रमापति रघुकुल राजा राम॥२

दशरथनंद कौसल्या सुत राम।
जानकि वल्लभ जगदीश्वर राम॥३

जनक सुता प्यारे सीतावर राम।
कृपासिन्धु प्रनतपाल प्रभु राम॥४

करुनानिधान भक्त वत्सल राम।
'शंकर' दरस दे दुख हरो राम॥५

17-6-84 घुटरुन चल आवो राघव राम।
हिय निरज आन प्रपलावो राम॥६

17/9/8।

पिता भोजन बेला बुला रहे।
बाल सखन संग थे खेल रहे॥१

दुखा न सके सखन दिल तज उनको।
चली जननी निहोर लाने को॥२

पितु मातु आनन्द देन रघुराई।
भागें जबै जब जननि नियराई॥३

मुख मोड़ मोड़, माधुरि पिलाते।
मुस्का, तरुन आगे घुप घुप किलकाते॥४

आगे सुत पाछे मा धरन न पाती।
मुलक मुलक मा भागती जाती॥५

हाँफन जब लागि, मा अधीर आये।
हरख, मुख चूम चूम गोद उठाये॥६

निरख देख विभोर हो रहे थे।
धूल लपटे सुत गोद बैठाये।।७

प्रथम ग्रास प्रभु सुख दे राजा।
परसाद पाया याचि राजा।।८

गोद तें ~~कि~~ खिसक किलके भगवाना।
श्याम सुख दधि-चुड़ा थे लपटाना।।९

तनि की सरक के, सुख देख दधि सना।
जनु हिल नभ जड़े तारे घना।।१०

प्रभु गजब के जन ग्वालन्द दासा।
बलि बलि 'संकर' सब सुख दाता।।११

(1305)

(374) see Pg 1474

11-10-81

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥ (5-26)

छुआत लोभ अपार अपर्ज संकर केरी।
सरस दरस दै दुरव हरौ हरी॥

पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी। (1-148)
दीनबन्धु प्रभु तुम्ह अन्तरजामी॥
करुनालय उर अन्तरजामी। (2-86)

करुनालय उर अन्तरजामी (2-86)
पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी (1-148)

छुआत लोभ अपार अपर्ज संकर केरी।
सरस दरस दै दुरव हरौ हरी॥

११०
बिनती बहुत करौं का स्वामी।
करुनालय उर अन्तरजामी॥ (2-86)

(1306) (सं. ले. सं. 36)

19/10/7

मनु - शतरूपाजी के वर

अत्यन्त श्रेष्ठ, पवित्र और साधकों को सिद्ध कर देने वाला नीमखार (नैमिषारण्य) तीर्थ है। महाराज मनु ने आयु भर धर्म का पालन किया - धर्म से सुख भोग तो प्राप्त होता है भक्ति की प्राप्ति नहीं होती - भक्ति बिना प्रभु प्राप्ति नहीं - यह विचार कर चौथेपन में अपने ज्येष्ठ पुत्र को बरबस राज्य सौंप कर अपनी धर्मपत्नि महारानी शतरूपाजी के साथ भगवत्प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा ले इस नीमखार तीर्थ में पहुँच उग्र तप दोनों दम्पत्तियों ने आरम्भ किया।

'निराकार निर्गुण ब्रह्म अपने भक्त की सेवा के वश होकर लीला तन धारण करते आये हैं' वेदों के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास कर दोनों दम्पत्ति द्वादश अक्षर मंत्र जपते हुए कठोर तप में रत होते हैं कभी शाक, फल, फूल

अन्न का त्याग करते हुए सिर्फ जल की
कर फिर उसे भी छः हजार वर्ष के बाद
त्याग कर सात हजार वर्ष केवल वायु
पीकर रह गये। तदनन्तर वायु को भी छोड़े
हुए मनु और शतरूपा दोनों ही दस
हजार वर्ष तक एक ही पैर खड़े रहे
तप करते रहे। इस अवधि में त्रिदेव
(ब्रह्मा, विष्णु, महेश) कई बार वरदेने
को आये और उन्हें लुभाते रहे किन्तु
निराकार निर्गुण पर ब्रह्म के असली
रूप को सगुण साकार में दर्शन करने
की अपनी निश्चय पर अडिग रहे
उसी तरह ज्यों के त्यों एक पैर पर खड़े
खड़े द्वादशाक्षर मंत्र का जप
अखंड रूप से चालु रखा। कारण सच्चे
अनन्य भक्त प्रभुदर्शन पाये बिना
त्रिदेव जैसे अधिकारी वरों से भी
सन्तुष्ट नहीं होते। इस तरह स्थिर मन
से चालू रखने से त्रिदेवों के वरों को
अस्वीकार करने उनका अपमान नहीं
करना पड़ा। - वरदान अन्य से लेना था
ही नहीं।

त्रिदेव तो सिर्फ तप के फल को देने वाले है किंतु भगवान तो तप से नहीं मिलते केवल कृपा करके ही अपने अनन्य भक्त को मिलते हैं। मनु-शतरूपा की अनन्यता और विश्वास को देख प्रभु ही प्रकट और आकाशवाणी होती है जो इच्छा हो वर माँगलो माँगलो यानि लोक परलोक दोनों ही माँग लो, अथवा तुम दोनों की कुछ अलग अलग इच्छा हो तो अलग अलग भी माँग लो (सर्वज्ञ प्रभु दोनों की इच्छाओं की भिन्नताओं को भी जानते हैं) त्रिदेव तो कई बार इनके निकट आये फिर भी इन दोनों के शरीर अस्थि मात्र ही रह गए "अस्थिमात्र होइ रहे शरीरा" यहाँ प्रभु आये ही नहीं है सिर्फ आकाशवाणी ही हुई है उसके सुनते ही "हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए।(१-१४५) इस प्रकार

उनको अपने स्वरूप होने का निश्चय कराया।।

प्रभु के स्वरूप की प्राप्ति है। शिवजी सिद्ध हैं उनके मन में बाल रूप बसता है फिर विचार आया कि बाल रूप से ही कहीं रघुवीर रूप के उपासक हैं।
"सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा" (१-५१) मन में किशोर रूप (११ से १५ साल का) बसता है। भुशुंडी जी बालक रूप के उपासक हैं
"बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।। (७-११३)
"सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ।। पुनि उर राखि राम सिसु रूपा निज आश्रम आवउँ खगभूपा।। (७-११४)
"जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई।। इष्टदेव मम बालक रामा।। (७-७५)।

राजा रानी दोनों का सम्मत एक है कि निर्गुण निराकार प्रभु के साकार रूप का दर्शन करना और दोनों की रुचि है। दोनों ही चतुर हैं विचारते हैं कि अपन के दर्शन से अपने काम के लिये तिलांजलि देकर प्रभु अन्तर्धान हो जायेंगे अतः निश्चय किया कि किशोर रूप रघुवीर के दर्शन पहले कर लें फिर बाल रूप के दर्शन तो पूर्ण रूप से पाते ही रहेंगे बाल रूप से फिर किशोर रूप के दर्शन भी मिलते ही रहेंगे। दोनों को अपने तप का गुमान ([illegible]) नाम मात्र का भी नहीं है अतः अतिकार्पण्य भाव से दण्डवत करते हुए पुलकित गात और प्रेम सिक्त लोचन हृदय से अपनी विनती सुनाने लगे। उन दोनों के भगवत्प्रेम की इतनी अभिव्यक्तता है कि हृदय में समा नहीं पाता है।

अभिलाषा व्यक्त बड़ी चतुरता से कर रहे हैं। "हे प्रभो! हम अज्ञान पर आप का प्रेम है तो प्रसन्न होकर यह वर दें कि शंकर जी के इष्ट रूप (आप) के दर्शन दें। और जिस रूप की मूर्ति का ध्यान करते हैं एवं भुशुण्डि के इष्ट देव के रूप का हम जी भर कर दर्शन कर के अपने नेत्रों को तृप्त कर लें।"

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥ (१-१४६) *

इस याचना में राजा सबसे पहले किशोर रूप के दर्शन की याचना करते हुए [illegible] को अपनी [illegible] की इच्छा भी अप्रकट रूप से व्यक्त करते।

अभी तक प्रभु इसलिये तो प्रकट नहीं हुए हैं कि भक्त जिस रूप के दर्शन चाहेगा उसी रूप में प्रकट होना है सिर्फ आकाशवाणी होकर रहे हैं अतः भक्त सिर्फ ध्यान ही कर सके। भक्त ने पहले शिवजी के इष्ट स्वरूप का ~~दर्शन~~ अर्थात प्रभु के किशोर रूप का दर्शन मांगा है (१२ से १५ साल के रूप का) और १३ वर्ष की उम्र में प्रभु श्री राम का श्री सीताजी से विवाह होगा इस लिये ~~प्रभु~~ पर ब्रह्म प्रभु श्री राम आदि शक्ति श्री सीताजी को अपने वाम भाग में लिये हुए प्रकट होकर दर्शन देते हैं "भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना।। (१-१४६) बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।। भृकुटि बिलास जासु जग होई। ~~[illegible]~~

राम बाम दिसि सीता सोई॥ (५-४-८४)

मनु महाराज की प्रार्थना है कि
अखंड ब्रह्म हमको दर्शन दें और
श्री सीताजी सहित ही पूर्ण ब्रह्म हैं, एवं
निराकार ब्रह्म बिना माया की सहायता
के सगुण साकार नयन-विषय-ग्राह्य
हो ही नहीं सकता, केवल निर्गुण
निराकार ब्रह्म निष्क्रिय है कोई
भी कार्य होगा दोनों [illegible] से ही होगा, राम
और 'सीता' दोनों नाम सनातन हैं।
जैसी छवि रामजी की है वैसी ही छवि श्री
सीताजी की है इसीलिये 'सोभा रति प्रभु कूलं'
कहा है। दोनों एक दूसरे से शोभा पाते हैं।
मूल प्रकृति 'महामाया' जगत की मूल
कारण है वह श्री जानकीजी की ब्रह्म
अंश है अतः अंश-अंशी नाम से जग-
मूला कहा है। श्री राम और श्री सीता
देखने मात्र के लिये दो रूप हैं पर
वास्तव में एक ही तत्त्व है एक सी ही
छवि और एक सी ही भृकुटि विलास है।

सम्मुख युगल सरकार दर्शन देने
खड़े हैं - भक्त दम्पति मनु और शतरूपा
छबि निधि श्री सीताजी और छबि
समुद्र श्री रामजी की अपूर्व नित्य अनुपम
सौन्दर्य माधुरि रस का पान अपने प्यासे नेत्रों
द्वारा एकटक करते करते अतृप्त ही
बने रहते हैं आनन्द विभोर हो
विदेह हो तन की सुध बुध भूल कर
युगल सरकार के चरणों में दंड
के समान गिरते हुए प्रभु के श्री चरणों
को पकड़ लेते हैं। करुणानिधान प्रभु अपने सुखद कर
उनके शिर पर फेर कर उन्हें तुरत
उठा लिया। भक्त आदर पूर्वक भगवत्
स्वरूप को देख रहे हैं इसलिये तुरत उठा
कर भगवान अपने अनन्य भक्तों का
आदर कर रहे हैं। भागवत और
भगवान की जय हो जय हो धन्य हो
प्रभु धन्य हैं आप की (जय अनन्त)।
यहाँ भगवान स्वयं दर्शन दे रहे हैं सम्मुख खड़े
हैं अतः भक्त प्रभु के श्री चरणों को पकड़ लेते।

तप का फल तो दर्शन हुआ सो तो दे दिया।
अब दर्शन का फल होना चाहिये क्योंकि
दर्शन का फल अमोघ जो है यथा
"जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर
दरसु अमोघ जग माहीं" (५-४९)
भगवान भक्त से कह रहे हैं "बोले
कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि
जानि। मांगहु बर जोइ भाव मन
महादानि अनुमानि" (१-१४८)
अपनी ओर से तुमने मांगा सो तो हमने
दर्शन देकर दे दिया। मैं अति प्रसन्न हूं (आपकी
तुम्हारी अति कार्यक्षमता है? पूर्णतः मैं अति
प्रसन्न हूं) अब मैं अपनी ओर से फिर
वर मांगने का उपदेश दे रहा हूं अपने
अपने मन भावने वर मांग लो मैं
महादानी हूं (यानि अन्य देव शर्त रख
देते हैं वर देते हैं, किन्तु मैं बिना किसी शर्त
के वर दूंगा। कारण मैं महादानी हूं)
प्रभु अपनी ओर से भक्तों के हृदय
की आन्तरिक अभिलाषा को

जानते हैं और यह भी जानते हैं कि इससे महानतर के सौन्दर्य स्वयं को न समझने के कारण संकोचवश अभिलाषा व्यक्त करने में हिचकिचाते हैं। अतः महादानी कह कर कहते हैं हिचकिचाओ मत माँग लो मैं तुम्हारी इच्छाओं को पूरी करूँगा।

एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम
कहि जाति सो नाहीं॥ (१-१४९)

कहना विधान कृपा करके प्रसन्न होते हैं प्रभु तो यहाँ अतिप्रसन्न होकर महादानी विरद का उल्लेख करके आश्वासन देते हुए मनमाना वर माँगने का आदेश देते हैं। अतः मनु जी के अन्दर छिपा का कथ्य संचार हुआ पर पाने की अपनी अयोग्यता विचार कर संविधान कर और होते हुए धीरज धार कर अपनी कोमल वाणी में कहते हैं 'मेरे प्रभो आप के असली स्वरूप दर्शन मिल जाय। तो आपको प्रकट दर्शन देकर हमारी

सारी कामनायें पूरी कर दी हैं किन्तु
एक बहुत बड़ी लालसा हृदय में छुपी
हुई यह लालसा भी प्रभु के स्वरूप प्राप्ति
की ही है दानी के लिये देना सुगम है
आप तो महादानी हैं अतः आप के लिये
देना तो अति सुगम है लेकिन मेरी
क्षुद्रता के कारण मुझे लगता है कि
शायद आप न देना चाहें क्योंकि मैं इसके
पाने योग्य पात्र नहीं हूँ मांगने के लिये
मुँह से कहने की हिम्मत ही नहीं हो रही
है। हे प्रभो आप अन्तर्यामी हो इस लालसा
को जानते हैं और दीन जन के मनोरथ
पूरा किया करते हैं अतः एव हमारे
मनोरथ पूरा करें स्वामी! मैं आपका
सुसेवक हूँ क्या मांगूँ आप ही पूरा कर दें।
"सकुच बिहाइ मांगु नृप मोही। मोरें
नहिं अदेय कछु तोही॥ (१-१४९)
प्रभु विचार करते हैं कि दरबार की
मर्यादा है कि मांगा जाय तब दिया
जाय अतः भक्त का संकोच नाश करते

हेतु प्रभु कह रहे हैं संकोच छोड़
कर माँग लो। तुम कौशिक नहीं हो। तुम
मेरे प्रिय जन हो अतः कुछ भी
अदेय नहीं रहेगा माँगोगे सो
ही मिल जायगा। राजा के दिल में
बड़ा संकोच था कि पुत्र छोड़कर
स्वामी और माँगा। पिता को
को एक तुच्छ और पुत्र रूप से
कैसे माँगूँ बड़ी धृष्टता हो जायगी
अतः त्याग कर प्रभु को संकोच में
डाल दूँगा न देते बनेगा। और न
मना करते ही बनेगा। (भरत जी) की
भी यही भावना है कि प्रभु को संकोच
में न डाला जाय "जो सेवकु साहिबहि
संकोची। निज हित चहइ तासु मति
पोची।। (२-२६८) किन्तु उन्होंने प्रभु ने
स्पष्टीकरण किया कि संकोच
छोड़ कर माँग लो अदेय नहीं है।
प्रभु के उपरोक्त वचन हैं। "माँगु
नृप मोहिं" बड़ा ही महत्वपूर्ण है यथा